आन्तरिक प्रस्फुटन

इंग्लैण्ड का 'ब्रॉकवुड पार्क स्कूल' अध्यापकों और वयस्क युवाओं का एक छोटा-सा समुदाय है जिसे जे० कृष्णमूर्ति ने एक ऐसे परिवेश के निर्माण के लिए संस्थापित किया था जहाँ अध्यापक-छात्र मिलकर जीवन के मौलिक प्रश्नों की छानबीन कर सकें और आन्तरिक रूप से प्रस्फुटित हो सकें। ऐसे समुदाय में रहते हुए जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है उनको ध्यान में रखते हुए कृष्णमूर्ति पूछते हैं: 'ब्रॉकवुड की सार्थकता कहाँ है यदि आप भी उन लाखों लोगों की तरह ही बनने जा रहे हैं जिन्होंने सहज प्रस्फुटन, प्रवाह एवं गहन विकास को उसके यथार्थ रूप में न तो कभी अनुभव किया है, न उसकी जिज्ञासा की है और न ही जिया है?' परिचर्चा के अन्त में कृष्णमूर्ति अपनी आधारभूत अन्त... हुए कहते हैं कि विचार की ... है लेकिन 'सम्बन्धों में यह ...

Library IIAS, Shimla
H 808.53 K 897 A
G6086

मूल्य : रुपये 10/-

आन्तरिक प्रस्फुटन

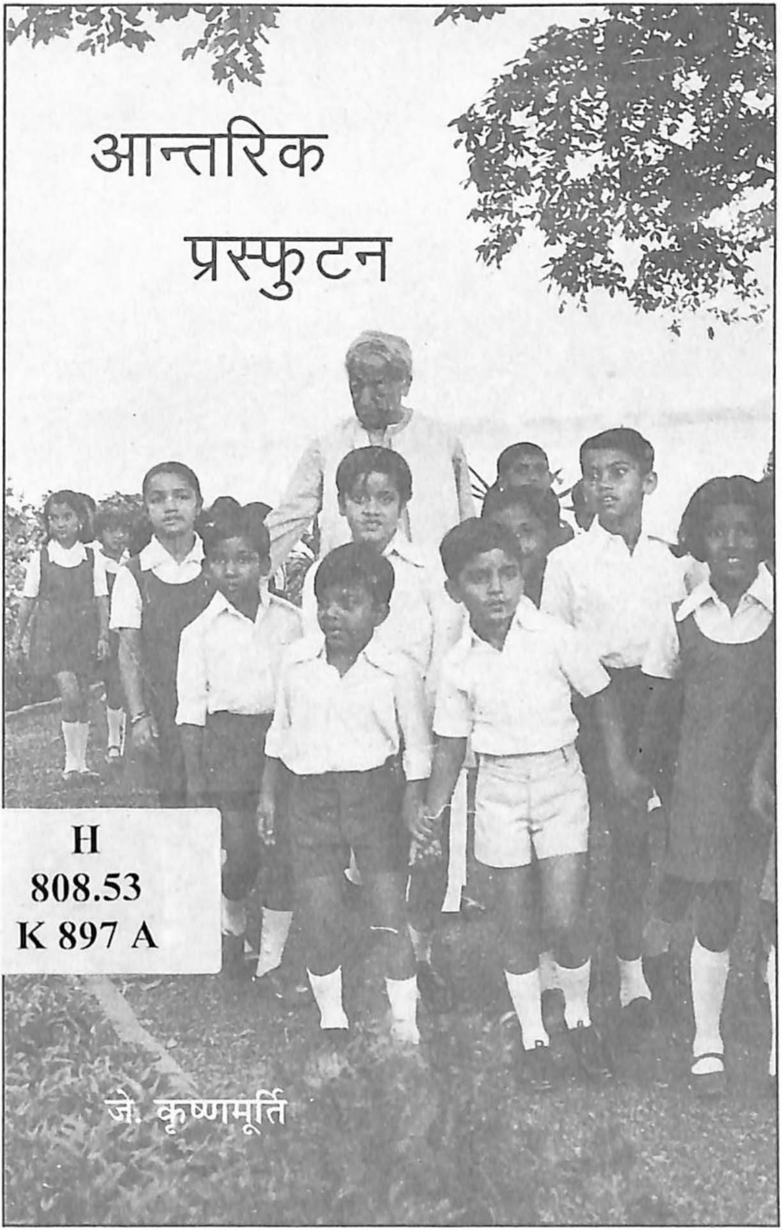

H
808.53
K 897 A

जे. कृष्णमूर्ति

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

आन्तरिक प्रस्फुटन

ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड के शिक्षार्थियों और अध्यापकों के साथ एक वार्ता

जे० कृष्णमूर्ति

•

अनुवाद : सरोज बिसारिया

जे० कृष्णमूर्ति प्रज्ञा परिषद्
कृष्णमूर्ति फ़ाउण्डेशन इण्डिया
राजघाट फ़ोर्ट, वाराणसी

Antarik Prasfutan - J. Krishnamurti

Hindi Translation of *Inward Flowering*

Translated by Saroj Bisariya

Authorised by Krishnamurti Foundation India

Library IIAS, Shimla
H 808.53 K 897 A
G6086

Acc No. G-6086
Date 30/11/09

H
808.53
K897A

© 1984 Krishnamurti Foundation India
Vasanta Vihar, 64-65, Greenways Road, Chennai 600 028
email : kfihq@md2.vsnl.net.in

Fourth Reprint in 2000

Published by
J. Krishnamurti Prajna Parishad
Krishnamurti Foundation India, Rajghat Fort, Varanasi 221 001
email : kcentrevns@satyam.net.in

Printed by
Sattanam Printers
Pandeypur, Varanasi.

कृष्णमूर्ति— मुझे लगता है कि यह अच्छा होता यदि हमलोग आज सुबह मिलजुल कर एक साथ इस प्रश्न पर बातचीत कर पाते : क्या इस समुदाय में हममें से प्रत्येक व्यक्ति आन्तरिक रूप से प्रस्फुटित और विकसित हो रहा है? अथवा क्या हममें प्रत्येक व्यक्ति एक संकीर्ण लीक का ही अनुगमन कर रहा है, जिसके फलस्वरूप जीवन के अन्त में हम अनुभव करेंगे कि हमने पूर्णतः प्रस्फुटित होने के अवसर का कभी उपयोग नहीं किया और फिर इसके लिए हम शेष जीवन भर पश्चात्ताप करेंगे? क्या हम इस विषय पर विचार कर सकते हैं?

मुझे लगता है कि मात्र ब्रॉकवुड का विद्यार्थी होने के नाते नहीं बल्कि शिक्षक होने के नाते भी हमें पूछना चाहिए : क्या आन्तरिक रूप से और संभवतः बाह्य रूप से भी— क्योंकि ये दोनों वस्तुतः सम्बद्ध हैं— हमलोग विकासोन्मुखी हैं? विकास का अर्थ शरीरतः लम्बा या हृष्ट-पुष्ट होना नहीं है बल्कि आन्तरिक, मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्फुटित होना है।

'प्रस्फुटन' से मेरा तात्पर्य विकास के उस रूप से है जहाँ हमें कोई चीज बाधा नहीं पहुँचाती, जहाँ वस्तुतः आमूल विकसित होने में

न कोई गतिरोध होता है, न किसी प्रकार की अड़चन। हममें से अधिकांश व्यक्ति शायद ही कभी प्रस्फुटित, विकसित एवं प्रफुल्लित हो पाते हैं। हमारे जीवन-क्रम में कुछ ऐसा घटित हो जाता है जो हमें मूर्ख सिद्ध कर देता है तथा हमें प्राणशक्ति से वंचित कर देता है। अस्तु, वहाँ गहन आन्तरिक परिपोषण का अभाव हो जाता है।

संभवत: ऐसा इसलिए है कि हमारे चतुर्दिक का संसार हमसे अपेक्षा करता है कि हम विशेषज्ञ बनें— चिकित्सक, वैज्ञानिक, पुरातत्वविद्, दार्शनिक आदि बनें— क्यों हम मनोवैज्ञानिक रूप से प्रचुर मात्रा में विकास नहीं कर पाते, इसका एक कारण यह भी हो सकता है।

मेरे विचार से, यह भी एक प्रश्न है जिसपर हमें परस्पर बातचीत करनी चाहिए। यहाँ एक साथ रहने वाले अध्यापक एवं विद्यार्थियों का छोटा-सा समुदाय होने पर भी ऐसा क्या है जो हमारे पूर्ण प्रस्फुटन में बाधक हो रहा है? क्या यह तो नहीं कि हम अपने समाज, अपने अभिभावक, अपने धर्म, अपने ज्ञान आदि के द्वारा कहीं गहराई से संस्कारबद्ध हैं? क्या वस्तुत: ये परिवेश-जन्य प्रभाव ही तो नहीं हैं जो प्रस्फुटन की गति को रुद्ध कर रहे हैं, जो बाधा एवं अवरोध उत्पन्न कर रहे हैं? तुम मेरा प्रश्न समझ रहे हो या नहीं?

देखो! यदि मैं कैथोलिक हूँ तो मेरा मन, मेरी बुद्धि, मेरी समग्र मनोवैज्ञानिक संरचना पहले से ही संस्कारबद्ध है, क्या नहीं है? मेरे माता-पिता मुझसे कहते हैं कि मैं कैथोलिक हूँ, मैं प्रत्येक रविवार को गिरजाघर जाता हूँ, वहाँ अपने समस्त सौन्दर्य के साथ बाइबिल का

संगीतमय पाठ है, वहाँ सुगंध है, सुवास है, वहाँ एक दूसरे को देखते हुए नवीन वस्त्रों एवं टोपियों में लोग हैं, वहाँ पादरी की सस्वरलयात्मक प्रार्थना है— ये सब कुछ मस्तिष्क को संस्कारबद्ध करते हैं— ऐसी स्थिति में प्रस्फुटन हो ही नहीं सकता। तुम समझ रहे हो न? मैं किसी लीक का अनुसरण कर रहा हूँ, किन्तु यही पथ, यही प्रणाली, यही प्रक्रिया, हमें सीमित कर रही है। अतएव वहाँ पुष्पवत विकास हो ही नहीं सकता। क्या अब तुम मेरा प्रश्न समझ रहे हो? जो कुछ यहाँ घटित हो रहा है, क्या यह वही है?

क्या हम विविध घटनाओं, संयोग-जन्य प्रसंगों, प्रभावों, अभिभावकों के एवं समाज के आग्रहों तथा इसी प्रकार की अन्यान्य बातों से इस बुरी तरह संस्कारबद्ध हैं कि हमारे विकास एवं सहज प्रवाह की गति ही रुद्ध हो गई है? यदि स्थिति यही है, तो क्या ब्रॉकवुड यहाँ हमारी संस्कारबद्धता को छिन्न-भिन्न करने में सहायता देता है? तुम मेरे प्रश्न को अब तो समझ रहे हो? यदि यह ऐसा नहीं करता तो इसके होने का अर्थ ही क्या है? ब्रॉकवुड की सार्थकता कहाँ है, यदि तुम भी उन लाखों लोगों की तरह ही बनने वाले हो जिन्होंने सहज प्रस्फुटन, प्रवाह एवं गहन विकास को उसके यथार्थ रूप में न तो कभी अनुभव किया है न तो उनकी जिज्ञासा की है और न ही जिया है? मेरा प्रश्न समझते हो न?

छात्र — आप जानते हैं कि बाहर के परिवेश में अत्यधिक दबाव है।

कृष्णमूर्ति — तुम कहते हो कि वहाँ अत्यधिक दबाव है। सावधानी के साथ इस विषय में प्रवेश करो, जिज्ञासा करो। यदि तुम पर दबाव न हो तो क्या तुम *कुछ* करोगे? अब क्या तुम इस ओर ध्यान दोगे? मैं तुम पर दबाव डाल रहा हूँ, समझते हो न? मैं वस्तुत: तुम्हें किसी कोने में ढकेल नहीं रहा हूँ, बल्कि मैं तुम्हें कुछ संकेतित कर रहा हूँ, तुम्हारे लिए यह भी दबाव हो सकता है, क्योंकि तुम देखना नहीं चाहते हो। तुम जीवन में आमोद-प्रमोद चाहते हो, तुम सोचते हो कि तुम एक विशिष्ट व्यक्ति बनो, तुम कुछ विशेष करना चाहते हो और इसीलिए तुम अन्य सभी की उपेक्षा करते हो। यदि तुम पर भी किसी प्रकार का बिल्कुल ही दबाव न हो, तो क्या तुम सक्रिय होगे? या फिर तुम और अधिक आलसी हो जाओगे, या उदासीन हो जाओगे, और अन्तत: निस्तेज हो जाओगे? तुम्हारे पास पति हो सकता है, पत्नी हो सकती है, संतान, घर, व्यवसाय सभी कुछ हो सकता है, किन्तु क्या आन्तरिक रूप में प्रस्फुटन रूपायित हो सकता है?

अस्तु, क्या यहाँ व्यक्ति को उचित प्रकार का दबाव मिल रहा है? क्या तुम समझ रहे हो? *उचित प्रकार का*— विवशताकारी दबाव नहीं, अनुकरण का भी दबाव नहीं, सफलता का भी दबाव नहीं, उच्चतर सोपान पर चढ़ना और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बनना भी नहीं— बल्कि वह दबाव जो तुम्हें आन्तरिक रूप से विकसित होने में सहायक होता है। तुम समझ रहे हो न? यदि व्यक्ति का प्रस्फुटन नहीं होता है तो व्यक्ति एक साधारण सांसारिक जीवन जीता है और साठ या अस्सी वर्ष की

आयु के अन्त तक मर जाता है। यही सामान्य व्यक्ति के जीवन की रीति है— क्या तुम्हारी दृष्टि इस पर गई है? जब तुम इस सबका अवलोकन करते हो, तो तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होती है, तुम इस विषय में क्या कहते हो?

छात्र — व्यक्ति स्वयं से पूछता है: क्या इस प्रकार के जीवन की कोई सार्थकता है?

कृष्णमूर्ति — देखो, मेरे मित्र! जैसे-जैसे बड़े होते हो, तुम स्वयं देख सकते हो कि बहुत थोड़े लोग ही सुखी हैं, क्योंकि वहाँ बहुत अधिक दबाव है, प्रतियोगिता है, एक पद के लिए हजारों की भीड़ है, बहुत बड़ी जनसंख्या है। संसार में प्रत्येक वस्तु और भी खतरनाक होती जा रही है। समझते हो न? और, जब तुम इन सबका अवलोकन करते हो, तो तुम्हारा प्रत्युत्तर क्या होता है?

छात्र — मैं देखता हूँ कि बढ़ती आयु के साथ मेरे माता-पिता, बिना किसी आवश्यकता के, चारों ओर दौड़ रहे हैं, क्योंकि उन्हें वह सब कुछ देखने का भय है।

कृष्णमूर्ति — तो तुम यह कह रहे हो कि संसार में अधिकांश लोग भौतिक सुरक्षा के साथ ही शायद मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की भी खोज कर रहे हैं। सुरक्षा किसी भी प्रकार की, चाहे शारीरिक हो या मनोवैज्ञानिक, क्या तुम्हें इस प्रस्फुटन का भावबोध दे सकेगी? समझ रहे हो न? मैं इस प्रस्फुटन शब्द का प्रयोग खिलने के अर्थ में कर रहा हूँ, भूमि पर जिस

प्रकार पुष्प खिलता है, बिना किसी बाधा के। अब प्रश्न है कि क्या तुम बाह्य एवं आन्तरिक दोनों ही प्रकार की सुरक्षा की खोज कर रहे हो? क्या तुम मनोवैज्ञानिक रूप से किसी पर निर्भर हो, किसी आस्था या विश्वास पर निर्भर हो, किसी राष्ट्र अथवा समुदाय के साथ अपने तादात्मय के इच्छुक हो अथवा किसी विशिष्ट तकनीकी विषय की शिक्षा ले रहे हो और उस पर कार्य कर रहे हो, क्योंकि यह भी तुम्हें आन्तरिक सुरक्षा दे सकेगी? क्या तुम मनोवैज्ञानिक सुरक्षा को किसी प्रकार के ज्ञान में खोज रहे हो?

इन सबका पता लगाने के लिए तुम्हें ये समस्त प्रश्न पूछने हैं। क्या नहीं पूछने हैं? तुम्हें पूछना है कि क्या मनोवैज्ञानिक सुरक्षा जैसी कोई वस्तु है भी? क्या तुम मेरा प्रश्न समझ रहे हो? देखो, अनेकानेक कारणों से मैं अपने पति पर, अपनी पत्नी पर, निर्भर हूँ— इसका कारण सुख-सुविधा, काम-वासना, प्रोत्साहन कुछ भी हो सकता है। जब मैं अपने को अकेला अनुभव करता हूँ, निराश अनुभव करता हूँ, तो अपने पास किसी को चाहता हूँ जो कहे, 'यह सब ठीक है, तुम बहुत अच्छा कर रहे हो', जो पीठ थपथपा कर मुझे बताये कि मैं कितना अच्छा हूँ। फलस्वरूप मैं शनैः-शनैः और अधिक सुख अनुभव करने लगता हूँ और सहज रूप से उस स्त्री या पुरुष के प्रति और भी अधिक निर्भर और आसक्त हो जाता हूँ। उस परस्पर सम्बन्ध में एक सुरक्षा की अनुभूति होती है, किन्तु वस्तुतः क्या उस प्रकार के सम्बन्ध में किसी प्रकार की सुरक्षा है?

छात्र — परस्पर-सम्बन्ध अति नाजुक होता है, अति क्षणिक होता है।

कृष्णमूर्ति — यह अति क्षणिक है, किन्तु क्या किसी भी सम्बन्ध में सुरक्षा स्थायी होती भी है? तुम्हें किसी से प्रेम हो सकता है— इन शब्दों का चाहे जो भी अर्थ हो— कुछ वर्षों तक तुम एक दूसरे के प्रति आसक्त भी रहोगे, भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों रूपों में एक दूसरे पर आश्रित भी रहोगे, और उस परस्पर-सम्बन्ध में तुम प्रतिपल उसी अनुभूति के सातत्य को खोज भी रहे हो। क्या तुम नहीं खोज रहे हो? कम-से-कम तुम उसकी आशा तो करते ही हो। परन्तु अपने को पूर्णतः बन्धन ग्रस्त करने के पूर्व, जिसे तुम प्रेम करना चाहते हो, क्या तुम्हें यह जिज्ञासा नहीं कर लेनी चाहिए कि मनुष्य मात्र के बीच किसी भी परस्पर सम्बन्ध में क्या किसी भी प्रकार की सुरक्षा है? जिसका अर्थ कदापि निराशा जनक और पीड़ादायी अकेलापन नहीं है।

तुम अकेले हो तथा स्वयं के साथ असुखद स्थिति में हो। स्वयं में अपूर्ण हो, भयभीत हो कि तुम अकेले जीवित रह ही नहीं सकते। अतएव, तुम शनैः-शनैः किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति आसक्त होते हो, क्योंकि तुम भयग्रस्त हो। फलतः घटित क्या होता है? जब तुम आसक्त होते हो, तब भी बराबर भयभीत रहते हो और इसका कारण है आसक्ति की वस्तु से वंचित हो जाने की सम्भावना। ठीक है न? वह व्यक्ति तुमसे विमुख हो सकता है, किसी दूसरे के प्रेम में पड़ सकता है। इसलिए,

मेरे विचार से, इस बात का स्पष्ट बोध महत्त्वपूर्ण है कि क्या परस्पर सम्बन्ध में किसी प्रकार की सुरक्षा है?

परस्पर-सम्बन्ध में प्रेम क्या है? तुम समझ रहे हो न? क्या सम्बन्धों में प्रेम एवं पूर्ण-परितुष्टि अथवा पूर्ण-सुरक्षा का भाव है? यदि तुम यह पाते हो कि सम्बन्धों में सुरक्षा नहीं है, तब तुम्हें यह भी पूछना पड़ेगा कि क्या प्रेम में सुरक्षा है? समझते हो न? नहीं, तुम नहीं समझ रहे हो? अच्छा ठीक है, हम इसका पुनरावलोकन करेंगे।

मैं तुममें आसक्त हूँ, मैं तुम्हें चाहता हूँ, मैं तुम्हारे प्रेम में पड़ गया हूँ, मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, सन्तान चाहता हूँ। लेकिन क्या यह आसक्ति स्थायी है? क्या यह शाश्वत है? या फिर यह अत्यन्त क्षणिक है, अस्थिर है, अनिश्चित है? यद्यपि मैं इसमें निश्चितता लाना चाहता हूँ, किन्तु वास्तव में यह बहुत ही अनिश्चित है। ठीक? अस्तु, सम्बन्ध का एक तत्व तो यह है। और हम कहते हैं कि सम्बन्धों में प्रेम होता है। अब प्रश्न है कि क्या प्रेम में सुरक्षा है? और प्रेम से हमारा अभिप्राय क्या है? क्या हम इसमें साथ-साथ अग्रसर हो रहे हैं?

अब मैं अपने पहले प्रश्न पर लौटता हूँ। मैं यह जान लेना चाहता हूँ कि फूल के समान खिलना, विकसित होना संभव है— पर्वतों पर और नृत्य करने में पूर्णता से जीना, क्या संभव है? यही है वह सब कुछ जिसे मैं जीवन में पाना चाहता हूँ? अथवा क्या जीवन सदा ही हताश, अकेला, दयनीय, आक्रामक, मूर्खतायुक्त ही रहने वाला है? तुम

समझ रहे हो न? यही प्रथम वस्तु है जिसे व्यक्ति पा लेना चाहता है? क्या ब्रॉकवुड तुम्हारे पुष्पित होने में, तुम्हारे प्रस्फुटित होने में, तुम्हारी सहायता कर रहा है?

ब्रॉकवुड में लोगों का एक-दूसरे के साथ सम्बन्ध है— जैसा और भी सब जगह है। तुम इसमें कुछ नहीं कर सकते। तुम एक दूसरे को प्रतिदिन देखते हो, और इस परस्पर सम्बन्ध में, तुम किसी के प्रेम में भी पड़ सकते हो। है न? और तुम उस व्यक्ति के प्रति आसक्त होते हो। जब तुम आसक्त होते हो, तो तुम उस आसक्ति के सातत्य की इच्छा करते हो, क्या नहीं करते हो? तुम चाहते हो कि यह तुम्हारे जीवन के अन्तिम क्षण तक अनन्त और अनश्वर रहे। अब तुम्हें यह पता लगाना है, उस परस्पर सम्बन्ध में क्या कुछ भी स्थायी है? क्या वह सम्बन्ध भी स्थायी है? (*मस्तक हिलाकर नहीं का संकेत*) अस्तु, तुम कहते हो कि यह स्थायी नहीं है? तुम कैसे *जानते* हो कि यह स्थायी नहीं है?

तुम किसी चर्च या पंजीकरण कार्यालय में जाकर विवाह कर सकते हो, किन्तु क्या उस परस्पर सम्बन्ध में संघर्ष-रहित, द्वन्द्व रहित, विलगाव निर्भरता इत्यादि से रहित, वास्तविक स्वतन्त्रता का सातत्य है? तुम कहते हो 'नहीं', लेकिन तुम 'नहीं' कहते ही *क्यों* हो? मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम ऐसा क्यों कहते हो। जब तुम प्रेम में होगे, विवाह के प्रथम वर्ष में क्या यही कह सकोगे? तब क्या तुम कहोगे कि इसमें सुरक्षा नहीं है? क्या ऐसा तुम कहोगे? या फिर कुछ ही वर्षों बाद,

पाँच वर्ष या बारह वर्ष बाद, तुम कहोगे 'हे, ईश्वर! यहाँ तो कुछ भी सुरक्षा नहीं है'?

और तुम्हें यह भी खोज कर लेनी है कि क्या इस असुरक्षित, अनिश्चित, भयग्रस्त, नीरस, सुख के क्षण, आवृत्यात्मक, एकही मुख को वारम्बार दस, बीस या पचास वर्षों तक देखते रहने जैसे सम्बन्धों में क्या तुम पुष्पित, प्रफुल्लित, हो सकोगे? क्या तुम विकसित हो सकोगे? क्या तुम अत्यंत असाधारण रूप से सुन्दर एवं समग्र हस्ती होगे? और तुम्हें यह भी पता लगा लेना है कि जब तुम तथाकथित 'प्रेम में' हो— जो कि बहुधा प्रयुक्त, दूषित एवं अवमानित शब्द है— तब क्या उस भावना में तुम पुष्पित, प्रस्फुटित होगे?

छात्र — ऐसा प्रतीत होता है कि जब हम किसी के साथ सम्बन्ध रखते हैं, तब इसे जानने को कि क्या वहाँ सुरक्षा है या नहीं, हम इस बात का पता लगाने के लिए पर्याप्त समय नहीं देते; इसका कारण सम्भवतः यह है कि यह सम्बन्ध दो प्रतिमाओं के बीच ही कहीं अधिक होगा।

कृष्णमूर्ति — क्या तुम कह रहे हो कि हम एक दूसरे को, स्त्री पुरुष के रूप में, देखते हैं और इन प्रतिमाओं से निष्कर्ष निर्मित होते हैं? और हम इन निष्कर्षों का स्थायी सातत्य चाहते हैं?

छात्र— उस परस्पर सम्बन्ध में बहुत कुछ कृत्रिम एवं सतही चीजें होती हैं और इतना समय नहीं होता कि प्रतिमा से विरत होकर, जो कुछ यथार्थ है, उसका पता लगाया जा सके।

कृष्णमूर्ति— हम जिस विषय पर वार्ता कर रहे हैं उसमें प्रथमतः विचारणीय यह है कि क्या व्यक्ति प्रस्फुटित होने, पुष्पित होने, के महत्व को समझता है? इसकी महत्ता को, इसकी सत्यता को, इसकी वास्तविकता को, इसकी आवश्यकता को, इसके सौन्दर्य को, कि व्यक्ति को प्रस्फुटित होना ही चाहिए, क्या व्यक्ति समझता है और क्या यह सम्बन्ध, जैसा कि दो मनुष्यों के बीच होता है, प्रस्फुटित होने में सहायक होता है? यह एक बात है। दूसरी बात हमने यह भी कही है कि हम एक दूसरे से प्रेम करते हैं। क्या वह प्रेम मनुष्य के मन, मनुष्य के हृदय, एवं उनके मानवीय गुणों के प्रस्फुटन को परिपोषित करेगा? क्या तुम समझते हो ?

हम यह भी पूछ रहे है कि क्या यहाँ ब्रॉकवुड में तुम्हारा रहना तुम्हें पूर्णतः विकसित एवं *पुष्पित* होने में, मात्र तकनीकी या किसी विशिष्ट क्षेत्र में विशेषज्ञता परक नहीं, अपितु आन्तरिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप में, नितान्त आभ्यन्तरिक, अन्तःकरण से पुष्पित होने में सहायता देता है? क्या तुम अनुभव करते हो कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो गत्यावरोधक हो, बाधक हो, और यह भी कि तुम विक्षिप्त न हो, असंतुलित न हो, बल्कि विकासशील, प्रस्फुटनशील, समग्र, सम्पूर्ण मनुष्य हो?

अस्तु, अब हमें जिज्ञासा करनी है कि प्रेम क्या है? ठीक? तुम क्या सोचते हो कि यह क्या है? यहाँ एक समस्या है। तुम अपने माता-पिता से प्रेम करते हो और माता-पिता तुम्हें प्रेम करते हैं, कम-से-कम वे यही कहते हैं और तुम भी यही कहते हो। क्या हम एक खतरनाक भूमि पर हैं? मेरा प्रश्न यह है कि क्या वे वास्तव में प्रेम करते हैं?

अब हमें अपने पहले प्रश्न पर वापस आना चाहिए : क्या हम अनुभव करते हैं, शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही, क्या हम सब इसका अत्यन्त महत्व, इसकी आवश्यकता, देखते हैं कि प्रत्येक मनुष्य, हममें से सब, विकसित हों, प्रस्फुटित हों, केवल मात्र भौतिक रूप में ही परिपक्व न हों, बल्कि उनमें आन्तरिक गहन परिपक्वता भी हो। यदि तुम प्रस्फुटित नहीं होते, तो फिर इन सबका अर्थ ही क्या है? तुम्हारे शिक्षित होने का भी क्या अर्थ है, किसी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना, उपाधि प्राप्त कर लेना, वृत्ति प्राप्त कर लेना, यदि भाग्यवान हो तो गृह निर्मित कर लेना— लेकिन यह सब क्या तुम्हारे लिए सहायक होगा, क्या प्रत्येक मनुष्य के लिए, तुम में से हर एक के लिए, पुष्पित एवं प्रस्फुटित होने में सहायक होगा?

यदि तुम मेरी पुत्री या पुत्र होते तो मैं सर्वप्रथम इसी विषय की तुमसे चर्चा करता। मैं तुमसे कहता, *देखो,* अपने चारों ओर देखो, विद्यालय में अपने मित्रों, अपने पड़ोसियों को देखो, तुम्हारे चतुर्दिक क्या घटित हो रहा है उसे देखो, अपनी-अपनी इच्छा और अनिच्छा के अनुसार नहीं बल्कि केवल *यथार्थ* को देखने के लिए देखो। यथातथ्य रूप में देखो, बिना उसे विकृत या विरूपित किये उसे देखो। जो विवाहित हैं वे दु:खी हैं, वहाँ लड़ाई-झगड़े, अनन्त विवाद एवं संघर्ष चलता रहता है, तुम जानते हो न? और जो लड़के हैं, लड़कियाँ हैं, उनकी भी अपनी समस्याएँ हैं। और जो मनुष्य हैं उनमें भी अनेक वर्ग हैं— जातिगत, समूहगत, राष्ट्रगत, धर्मगत, विज्ञानगत, व्यवसायगत, कलागत— समझते

हो न? सभी कुछ खण्डित है। क्या तुम उसे *देखते* हो? तब दूसरा प्रश्न यह उठता है कि किसने इसे खण्डित किया है? समझे? यह मनुष्य का ही कृतित्व है। विचारों ने ही ऐसा किया है, विचार जो कहते हैं 'मैं कैथोलिक हूँ', 'मैं यहूदी हूँ', 'मैं अरब हूँ', 'मैं मुस्लिम हूँ', 'मैं ईसाई हूँ।' विचारों ने ही इस विभाजन को उत्पन्न किया है। अतएव, विचार अपने मूल रूप में, कार्यरूप में, प्रकृत्य: विभाजक है, खण्ड-खण्ड करने वाला है। क्या तुम जानते हो कि विचार विखण्डन लाते ही हैं, तुम्हारे आभ्यन्तर में ही नहीं बल्कि वाह्य में भी? क्या यह विषय बहुत कठिन हो रहा है?

मैं पूछ रहा हूँ कि क्या तुम वस्तुत: देख पाते हो कि विचार अपने मूल स्वरूप और क्रिया में विखण्डन लाते ही हैं? और यदि तुम कहते हो कि तुम इसे देखते हो, तो क्या इसे *यथार्थ* रूप में देखते हो या केवल *अभिमत रूप* में। तुम समझते हो? यह क्या है? क्या यह अभिमत है या यथार्थ?

छात्र — यह अभिमत हैं।

कृष्णमूर्ति — तो फिर तुम अभिमत निर्मित ही क्यों करते हो? मैं तुमसे कहता हूँ, अपने चतुर्दिक देखो— युद्ध, आतंक, बम, हिंसा, प्रत्येक घर में सम्बन्धों में निरन्तर व्याघात, प्रतिस्पर्द्धाग्रस्त समाज, व्यापारिक समाज, इत्यादि। क्या तुम इन सबको यथार्थ रूप में देखते हो वैसे ही जैसे इस मेज को? या फिर अमूर्तीकरण ही है जिसे एक अभिमत कहा जाता है? और यदि यह एक अभिमत है तो तुम इसे बनाते ही क्यों हो जबकि यह प्रत्यक्षत: *यथार्थ* है।

यदि वे तुमसे प्रेम करते हैं तो तुम्हारे जन्म के क्षण से ही तुम पर वे ध्यान देंगे कि तुम संस्कारबद्ध न हो, तुम्हारा पुष्पवत् प्रस्फुटन हो, क्योंकि तुम एक मनुष्य हो, क्योंकि तुम ही संसार हो। यदि तुम्हारा प्रस्फुटन नहीं होता तो तुम संसार के जाल में फँस जाते हो, तुम दूसरे मनुष्यों को नष्ट करते हो। यदि तुम्हारे माता-पिता तुमसे प्रेम करते हैं तो उन्हें देखना होगा कि तुम सम्यक् रूप से शिक्षित हो रहे हो, केवल जीविकोपार्जन के लिए तकनीकी रूप में नहीं, अपितु आन्तरिक रूप में भी, जिससे कि तुम्हारे अन्दर किसी प्रकार का संघर्ष न हो। यह सब कुछ इसमें समाहित हो जाता है जब मैं यह कहता हूँ कि मैं अपनी पुत्री अथवा पुत्र से प्रेम करता हूँ। मैं नहीं चाहता हूँ कि वह विपुल धनार्जन करने वाला प्रथम श्रेणी का व्यवसायी बने, आखिर क्यों? या एक महान विशेषज्ञ बने यद्यपि कि वह विशेषज्ञता यत्र-तत्र बाह्यरूप से अधिक अच्छे पुल आदि के निर्माण में सहायक हो सकती है, अच्छी डाक्टरी इत्यादि भी कर सकती है।

अस्तु, प्रेम क्या है? क्या इसे जान लेना अत्यन्त आवश्यक नहीं है? क्या तुम इसे जान लेना नहीं चाहते हो? अवश्यमेव तुमने अपने चतुर्दिक लोगों का, माता-पिता, मित्रों, दादी-नानी आदि का अवलोकन किया होगा। वे सभी 'प्रेम' शब्द का प्रयोग करते हैं और फिर भी वे लड़ते-झगड़ते हैं, उनमें प्रतिस्पर्धा रहती है, वे एक दूसरे के विनाश के इच्छुक रहते हैं। समझते हो न? क्या वह प्रेम है? तुम्हारी दृष्टि में प्रेम क्या है?

छात्र — इस विषय पर बातचीत करना कठिन है।

कृष्णमूर्ति — तुम क्या अनुभव करते हो? तुम्हारे लिए प्रेम क्या है? मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि तुम सभी 'प्रेम' शब्द का प्रयोग करते हो, क्या नहीं करते हो? अत्यधिक प्रयोग करते हो। तो फिर इसका अर्थ क्या है? तुम 'घृणा' शब्द और उसका अर्थ जानते हो। तुम इसकी अनुभूति से भी परिचित हो। परिचित हो न? प्रतिद्वन्द्विता, क्रोध, ईर्ष्या आदि इसी 'घृणा' के अंग हैं। क्या ऐसा नहीं है? प्रतिस्पर्धा भी 'घृणा' का ही एक अंग है। ठीक? तो तुम उस अनुभूति को जानते हो कि लोगों से 'घृणा' करने का क्या अर्थ होता है। तुम इसे शब्दों में भली प्रकार रख भी सकते हो। अब बताओ कि क्या 'प्रेम' घृणा का विलोम है?

छात्र — अनुभूतियाँ विपरीत हैं।

कृष्णमूर्ति — अस्तु, क्या तुम अपने मस्तिष्क में, अपने हृदय में, प्रेम और घृणा दोनों को धारण कर सकते हो? इस पर स्थिर रहो। क्या तुम्हें प्रेम और घृणा दोनों की एक साथ अनुभूति होती है? या एक साथ नहीं? एक रखा हुआ है एक कोने में, और दूसरा रखा हुआ है दूसरे कोने में। मैं किसी से तो प्रेम करता हूँ और किसी से घृणा करता हूँ। ठीक? किन्तु यदि तुममें प्रेम है तो क्या किसी से घृणा कर सकते हो? क्या तुम लोगों की हत्या कर सकते हो, क्या तुम बम फेंक सकते हो या और ऐसे कार्य, जो आज के संसार में घटित हो रहे हैं, कर सकते हो?

छात्र — सम्भवत: कार्य-क्षेत्र की संरचना के कारण विचार सीमित होता है। यह वस्तुओं को अतीत से ग्रहण करता है और अन्य वस्तुओं के साथ उनकी तुलना करता है।

कृष्णमूर्ति — विचार स्वयं में खण्डित, भग्न, सीमित, क्यों है? स्वयं में, परिणाम मात्र में नहीं। क्या विचार समय का परिणाम नहीं है? इसका अवलोकन करो, इसे जानो। क्या विचार समय की गति का परिणाम नहीं है। निश्चिय ही विचार स्मृति का परिणाम है। तुम इसे देखो। यह स्मृति, अनुभव, ज्ञान और वह सब कुछ जो अतीत है, उसका ही परिणाम है। वर्तमान में यह संशोधित होता है और चलता रहता है। अस्तु यह समयगत गति है। विचार, क्योंकि अतीत जन्य है, समयगत है, अत: इसे खण्डित होना ही चाहिए। न तो यह समग्र है, और न कभी यह समग्रता को प्राप्त ही कर सकता है।

सुनो। नौ वर्ष की आयु में मैंने अंग्रेजी और अन्य भाषाएँ सीखी हैं। यह स्मृति है, क्या नहीं है? इसे सीखने में मुझे कुछ वर्ष लगे हैं और वह मेरे मस्तिष्क में संचित है— शब्द, पद-योजना, उनके द्वारा फिर वाक्य रचना, इस सब में समय लगा है। क्या नहीं लगा है? उस समयावधि से उपजने वाला कोई भी विचार सीमित है। अत: विचार समग्र नहीं है, पूर्ण नहीं है। विचार कभी भी पूर्ण नहीं हो सकते, क्योंकि यह सदैव सीमित हैं। कृपया इसे देखें, एक अभिमत के रूप में नहीं वरन यथार्थ के रूप में। हमने कहा है कि विचार स्मृति का प्रत्युत्तर है। स्मृति मस्तिष्क में संचित रहती है, यह अनुभव एवं ज्ञान का सतत संचय है। अब यदि

तुमसे कुछ पूछा जाता है तो स्मृति प्रत्युत्तर देती है। अत: विचार को सीमित होना *ही* चाहिए क्योंकि स्मृति सीमित है, ज्ञान सीमित है, समय सीमित है।

यह विचार ही है जिसने संसार में विभाजन को जन्म दिया है। तुम डच हो, मैं जर्मन हूँ, वह अंग्रेज है, और वह दूसरा चीनी है। यह विभाजन विचार जन्य है। विचार ने ही धर्मों को जन्म दिया है— विचार जो यह कहते हैं, 'ईसामसीह महान उद्धारकर्ता हैं', अब यदि भारत में जाओ तो वह कहेंगे 'क्षमा कीजिए, कौन हैं यह महानुभाव, मैं इन्हें बिल्कुल नहीं जानता। हमारा अपना ईश्वर है, जो सर्वश्रेष्ठ है।' विचार ने ही युद्ध को जन्म दिया है और युद्ध के उपकरण को भी। विचार ही इस सबके लिए उत्तरदायी है। ठीक ?

छात्र — यह समस्त अभिमत ही हैं जिनका आपने उदाहरण दिया है ...

कृष्णमूर्ति — ये अभिमत नहीं हैं, ये *यथार्थ* हैं।

छात्र — हाँ, हाँ, लेकिन ...

कृष्णमूर्ति — मैं इस पर *स्थिर* रहना चाहता हूँ। मैं तुमसे पूछ रहा हूँ कि क्या तुम इस *यथार्थ* को देखते हो कि तुम एक देश के हो और मैं किसी दूसरे देश का। हम लोगों का वर्ण भिन्न है, संस्कृति भिन्न है, और इससे भी परे क्या तुम देखते हो कि भारत में हिन्दू एवं मुस्लिम जैसे विभाजित हैं? इसकी रचना किसने की है?

छात्र — मै यह विभाजन देखता हूँ, पर मैं व्यक्तिगत रूप से उसकी परवाह नहीं करता क्योंकि वह सतही है।

कृष्णमूर्ति — *तुम्हें* परवाह नहीं हो सकती है, किन्तु कुछ लोग *अवश्य* करते हैं, और वे परस्पर घृणा भी करते हैं। ठीक, इस विभाजक विचार के पीछे क्या है? संस्कारबद्धता? क्या ऐसा नहीं है? मेरे माता-पिता ने मुझसे कह दिया है 'तुम ब्राह्मण हो', 'तुम हिन्दू हो' और तुम्हारे माता-पिता ने बताया है कि 'तुम ईसाई हो।'

छात्र — समूह में रहना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है।

कृष्णमूर्ति — समूह में रहने की व्यक्ति की सहज प्रवृत्ति आखिर है क्यों? क्योंकि समुदाय का अंग बन जाना अधिक सुरक्षादायक है। अपने को एक छोटे समूह का अभिन्न अंग समझने में सुरक्षा है, लेकिन तुम संसार के समस्त मनुष्यों के साथ अभिन्नता क्यों नहीं स्थापित करते? सम्पूर्ण मनुष्य जाति के साथ, किसी एक समुदाय के साथ क्यों?

अतएव मैं संकेतित कर रहा हूँ कि विचार ने ही समस्त मानवीय, मनोवैज्ञानिक एवं सांसारिक समस्याओं को उत्पन्न किया है। इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। क्या तुम इसे देख पाते हो— यह यथार्थ है जैसा कि तुम्हारे दाँत का दर्द। तुम यह कभी नहीं कहते हो कि यह एक अभिमत है कि मेरे दाँत में दर्द है।

अब इसे हम इस प्रकार रख सकते हैं। क्या विचार प्रेम है? क्या विचारणा प्रेम को जन्म दे सकती है?

छात्र — यदि व्यक्ति किसी से प्रेम करता है तो उसे विचार करना पड़ता है।

कृष्णमूर्ति — मैं तुमसे जो पूछ रहा हूँ वह यह है कि क्या प्रेम विचार द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है? हमने कहा है कि विचार विखण्डक होते हैं, और ये सदा ही विखण्डक रहेंगे।

अब दूसरा प्रश्न है — विचार, विखण्डक होने के कारण अपनी क्रिया एवं कार्य-व्यापार में भी विखण्डन लाने वाला होता है, तब क्या विचार प्रेम का प्रवर्तक एवं पोषक हो सकता है?

अब यदि तुम 'नहीं' कहते हो तो थोड़ा सावधान हो जाओ क्योंकि मैं यहाँ बाधा डालने जा रहा हूँ! जब तुम कहते हो 'नहीं, विचार प्रेम नहीं है', तो फिर क्या यह अभिमत है या एक यथार्थ? यदि यह एक यथार्थ है, यह ऐसा ही कुछ है, तब जहाँ तक 'प्रेम' का सम्बन्ध है वहाँ तक विचार की गति नहीं होती।

क्या तुम्हारे लिए यह कुछ अधिक कठिन हो रहा है? क्या तुम इसे समझते हो, (मस्तक को छूते हूए) यहाँ से नहीं, बल्कि गहन आंतरिकता से?

तुम्हें बहुत-बहुत सजग होना है। यदि प्रेम विचार नहीं है, यदि यह विचार पर आधारित नहीं है, तब परस्पर सम्बन्ध क्या है? यदि विचार प्रेम नहीं है तो तुम उस यथार्थ, वास्तविक सम्बन्ध के साथ क्या करते हो जो अब तुम्हारे साथ हैं?

मैं स्वयं से कहता हूँ कि मैं यथार्थ देखता हूँ, अभिमत नहीं, कि विचार प्रेम नहीं है। परन्तु मैं विवाहित हूँ, मेरी सन्तानें हैं, मेरी माँ है— हम सब एक दूसरे की प्रतिमाएँ बनाये रखते हैं। यह अन्योन्याश्रित सम्बन्ध प्रतिमा का ही कृतित्व है— प्रतिमाएँ जो मैंने अपनी माँ, अपनी पत्नी, अपनी सन्तान की निर्मित की हैं और इसे ही हम 'प्रेम' कहते है— और मैं कहता हूँ कि 'मैं अपनी माँ से प्रेम करता हूँ', 'अपनी पत्नी से प्रेम करता हूँ', 'अपनी सन्तान से प्रेम करता हूँ।'

अब मैं यह कह रहा हूँ कि मैं देखता हूँ कि यह सम्बन्ध विचार पर आधारित है, प्रतिमा पर आधारित है। और मैं बहुत स्पष्ट रूप से यह भी देखता हूँ कि 'प्रेम' विचार की उत्पत्ति नहीं है, प्रेम विचार नहीं हो सकता। तब माँ के प्रति, पत्नी के प्रति, सन्तान के प्रति, मेरा क्या सम्बन्ध रहता है ?

छात्र — आप इसे कैसे देख पाते हैं?

कृष्णमूर्ति — यहाँ 'कैसे' के लिए कोई स्थान नहीं है— यह कोई यांत्रिक वस्तु नहीं है। वस्तुतः क्या तुम नहीं देख पाते हो कि प्रेम का विचार से कोई सम्बन्ध नहीं है— बस— मुझे बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि विचार एक विखण्डनशील गति है। मैं *बहुत* स्पष्ट रूप से देखता हूँ। यह एक तथ्य है, वास्तविकता है— एक अभिमत नहीं है।

लेकिन मैं विवाहित हूँ, मेरी सन्तान हैं, मेरी माँ है, और जब मैं देखता हूँ, अनुभव करता हूँ, कि मेरा सम्बन्ध प्रतिमाओं पर आधारित है, विचार पर आधारित है तब क्या घटित होता है?

छात्र — प्रतिमाओं के बीच उस सम्बन्ध को ही सामान्यतः प्रेम कह दिया करते हैं, लेकिन आप कह रहे हैं कि प्रेम उससे कुछ भिन्न वस्तु है।

कृष्णमूर्ति — मैं कहता हूँ, मैंने प्रेम किया है, वर्षों से विवाहित हूँ, मेरी सन्तान हैं। पत्नी के बारे में एक प्रतिमा है। ठीक? मैंने उसे निर्मित किया है। उसने मुझे परेशान किया है, मुझे धमकाया है, मुझपर आधिपत्य जमाया है। और उसने भी मेरे बारे में एक प्रतिमा बना रखी है कि मैंने उसे धमकाया है और उसपर आधिपत्य जमाया है। दोनों के बीच यही क्रिया चल रही है— काम-वासना के रूप में एवं अन्य रूपों में भी। मैंने उसका एक चित्र बनाया है और उसने भी मेरे विषय में एक चित्र बनाया है। यह एक तथ्य है। कृपया इसे देखो। ध्यान दो कि यह प्रतिमा की रचना ही *विचार की गति* है। जब तक तुम इसे स्पष्टतः देख न लो तब तक वहाँ से हिलो मत। उस तथ्य से हिलो मत।

अब तुम आकर मुझसे कहते हो कि विचार विखण्डन की गति है। तुम बहुत ध्यानपूर्वक मुझे समझाते हो कि यह क्यों है— क्योंकि यह समयबद्ध है, स्मृतिबद्ध है, अतएव यह अत्यन्त सीमित है। मैं उसे देखता

हूँ। अब इसका दूसरा सोपान है— मैंने इसे जब अपनी माँ, पत्नी और सन्तान के सम्बन्ध में देख लिया है तब मुझे क्या करना है?

अस्तु, अब होता क्या है? जब मैं यह अनुभव करता हूँ कि मेरा अपनी पत्नी, अपने पति, लड़के अथवा लड़की या जो कोई भी हो, उसके साथ सम्बन्ध समय एवं विखण्डन की ही गति है, तो होता क्या है?

यदि तुम इसे देख पाते हो— तब प्रश्न है : "प्रेम क्या है"? क्या प्रेम इसी के समान है? क्या प्रेम विखण्डन है? क्या प्रेम एक चित्र है, विचार निर्मित एक प्रतिमा है, एक स्मृति है?

छात्र — सर्वप्रथम प्रेम की अनुभूति में व्यक्ति कुछ सौन्दर्य देखता है। फिर वह उसे निखारना चाहेगा।

कृष्णमूर्ति — क्या तुम किसी सुन्दर चीज को देखते हो? क्या तुम सचमुच किसी सुन्दर चीज को देखते हो?

जब मैदान में खड़े सुन्दर वृक्ष या एक स्त्री या बादल या जल के व्यापक विस्तार को तुम देखते हो और देखते हो कि यह असाधारण रूप से सुन्दर है, तब क्या तुम केवल उसी के साथ रह सकते हो? अथवा, क्या तुम उसे अभिमत में बदल देते हो— एक अभिमत कि यह सुन्दर है? देखने के क्षण में क्या घटित होता है?

छात्र — वहाँ कोई शब्द नहीं है।

कृष्णमूर्ति — इसका अर्थ क्या है? कोई शब्द नहीं, कोई विचार नहीं। अस्तु, जब विचारों की गति नहीं होती, तभी सौन्दर्य घटित होता है। क्या तुम इससे सहमत हो? (मस्तक हिलते हैं) तुम सब एक हो इस सहमति में। कितना अद्भुत है!

अस्तु, जब तुम किसी सुन्दर वस्तु को देखते हो तो विचार तिरोहित हो जाते हैं। अब बताओ कि क्या तुम उस पल के साथ रह सकते हो, उससे परे न हटते हुए? उस बादल का अवलोकन करते समय मस्तिष्क में कोई कोलाहल नहीं है, क्योंकि विचार सक्रिय नहीं है। जब तुम असाधारण सौन्दर्य का साक्षात्कार करते हो, तो विचारों का नितान्त अभाव हो जाता है।

अब सावधान होकर इसका अवलोकन करो, ध्यानपूर्वक सुनो, कृपया ध्यानपूर्वक सुनो। बादल ने अपने प्रकाश से, अपनी भव्यता से, अपने अमित विस्तार से, तुम्हें अभिभूत कर लिया है। क्या तुम इसे देखते हो? बादल ने तुम्हें अपने में अन्तर्लीन कर लिया है। जिसका अर्थ है कि अन्तर्लीन होने की अवस्था में तुम अनुपस्थित हो। दूसरा सोपान, एक खिलौना बच्चे को अन्तर्लीन कर लेता है। खिलौना हटा दीजिए, बच्चा पुनः अपने नटखटपन में लौट आयेगा। ठीक ऐसा ही कुछ घटित हुआ है। बादल तुम्हें अपने में अन्तर्लीन कर लेता है और जब बादल चला जाता है तो तुम फिर अपने में वापस लौट आते हो।

तुम पर्वत द्वारा, मेघ द्वारा, वृक्ष द्वारा, चिड़िओं के कलरव द्वारा, भूमि के सौन्दर्य द्वारा, अन्तर्लीन हुए बिना भी क्या स्वयं में पूर्ण रिक्त रह सकते हो?

खिलौने को हटा दो तो बालक पुनः अपने नटखटपने चीखने-चिल्लाने की स्थिति में लौट आता है। किन्तु यदि उसे खिलौना दे दो तो वह खिलौना उसे अभिभूत कर लेता है। मैं तुमसे पूछ रहा हूँ कि बिना खिलौने के, अर्थात् बिना किसी अन्तर्लीन कर लेने वाले उपकरण के, क्या तुम्हारी स्वयं की अनुपस्थिति हो सकती है? इसके सौन्दर्य को अवश्य देखो— तुम समझते हो न?

अस्तु, सौन्दर्य तभी है, जब तुम नहीं हो। सौन्दर्य तभी है, जब विचार अनुपस्थित है।

अतः प्रेम विचार नहीं है, क्या तुम इस सम्बन्ध सूत्र को अब देख रहे हो?

मैं तुमसे प्रेम करता हूँ— तुमने मुझे अपने में अन्तर्लीन कर लिया है— मैं तुम्हें चाहता हूँ— तुम मुझे मनोरम लगते हो, तुम्हारी गंध मनोरम है, तुम्हारे केश मनोरम हैं, मेरी ग्रन्थियों की माँग है काम-वासना तथा और तरह-तरह की वस्तुएँ । तुमने मुझे अपने में अन्तर्लीन कर लिया है, मैं तुम्हारे प्रेम में पड़ गया हूँ, यही अन्तर्लयन है। मैं तुमसे सम्पृक्त हूँ। मैं तुमसे प्रेम करता हूँ परन्तु उसी समय मेरा पुरातन 'अहं' अपने को प्रतिपादित करता है और कहता है, हाँ, दो वर्ष पूर्व वह सब कुछ

मनोरम था पर अब मैं उसे पसन्द नहीं करता। मैं उससे प्रेम करता था— लेकिन अब— अवलोकन करो क्या घटित हुआ?

कृपया इस सत्य का साक्षात्कार करो— जहाँ सौन्दर्य होता है वहाँ विचार पूर्णतः अनुपस्थित होता है। अस्तु, प्रेम 'स्वयं' की पूर्ण अनुपस्थिति है। समझे? यदि तुमने इसे ग्रहण कर लिया तो तुमने जीवन की निर्झरिणी का पान कर लिया।

छात्र — क्या इस अनुभूति में अन्तर्लीन होना भी समाविष्ट है?

कृष्णमूर्ति — अनुभूति क्या है? यदि विचार ही नहीं है तो क्या तुम्हें कोई अनुभूति होगी? ध्यानपूर्वक इसे देखो। *अवलोकन* करो। क्या सौन्दर्य अनुभूति है? हमने कहा है कि सौन्दर्य विचार विहीन है, तो क्या अनुभूति विचारों के अभाव में भी हो सकती है? इसका सार ग्रहण करो, सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त करो— विवरण छोड़ दो, विवरण बाद में ग्राह्य हो सकते हैं। इसी एक वस्तु के सत्य का साक्षात्कार करो— जहाँ सौन्दर्य है वहाँ विचार नहीं है। जहाँ प्रेम है वहाँ 'मैं' की अनुपस्थिति है, 'मैं' जो निरन्तर कोलाहल, शोरगुल करता रहता है, वह समस्याओं, चिन्ताओं एवं भय से ग्रस्त है। जब इस 'मैं' की अनुपस्थिति होती है, तभी प्रेम अस्तित्वमान होता है।

छात्र — आप बादल को देखते हैं और वह चला जाता है, आप पुनः अपने में लौट आते हैं।

कृष्णमूर्ति — क्या तुमने एक नन्हें बालक को एक नन्हीं बालिका

को एक गुड़िया देते देखा है। वह बालिका पूर्णतः प्रसन्न है, शान्त है, न किसी प्रकार की बेचैनी और न रोना-धोना। किसी बालक को एक जटिल-सा खिलौना दे दो, वह उसके साथ खेलते हए एक घण्टा बिता देगा। वह नटखटपना भूल जाएगा। वह गुड़िया, वह खिलौना, उनके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। अब जब तुम बादल को देखतो हो, आकाश में उड़ती हुई चिड़िया को *देखते* हो, तो क्या होता है? तुम्हारा वृथालाप बन्द हो जाता है। और जब तुम कोई फिल्म देखते हो तो तुम उसी को *देख* रहे हो। तुम अपनी समस्याओं, अपनी चिन्ताओं और अपने भय के विषय में नहीं सोच रहे हो। तुम फिल्म द्वारा अन्तर्लीन कर लिए गये हो। फिल्म को रोक दो और तुम अपने में लौट आते हो। यदि थोड़ा और गहराई में जायें तो तुम देखोगे कि अभिमत तुम्हारे खिलौने हैं, आदर्श तुम्हारे खिलौने हैं, और वे तुम्हें पूरा का पूरा अभिभूत किये रहते हैं। विविध धर्म तुम्हारे खिलौने हैं। जब इनके प्रति प्रश्न उठाये जाते हैं तो तुम स्वयं में लौट आते हो, तुम्हारी शान्ति भंग हो जाती है, तुम भयभीत हो जाते हो।

छात्र — क्या ऐसी एक भी वस्तु नहीं है जो इसके बाहर हो, खिलौनों के संसार से बाहर हो?

कृष्णमूर्ति — मैं उसे तुम्हें दिखा चुका हूँ। कृपया ध्यानपूर्वक सुनो। हमने कहा है कि विचार ने ही इस संसार को रचा है। व्यापक युद्ध, व्यापारी, राजनीतिज्ञ, कलाकार, धूर्त— समाज ने ही इन सबको बनाया है। समाज हमारा पारस्परिक सम्बन्ध है— और यह विचार पर

आधारित है। अतएव इस भयानक गड़बड़झाले के लिए विचार ही उत्तरदायी है। क्या ऐसा नहीं है? या फिर यह केवल एक अभिमत मात्र है। यदि तुम इसे मात्र अभिमत कहते हो तो इसका अर्थ है कि तुम वास्तविक तथ्य को नहीं देख रहे हो।

अब उससे आगे चलो। हमने कहा है कि विचार विखण्डक है। यह जो भी करता है विखण्डनकारी ही होगा। क्या तुम उसे उतना ही वास्तविक एवं यथार्थ रूप में देखते हो जितना कि मुझे यहाँ बैठा हुआ?

छात्र — वह सब यांत्रिक विचार है, लेकिन इसके पीछे क्या कुछ ऐसा है जो इसे प्रयोग में लाता है?

कृष्णमूर्ति — तुम्हारे पास और कुछ भी नहीं है, है केवल यांत्रिक विचार। जब उस यांत्रिक विचार की गति रुकती है, तभी कुछ और होता है। लेकिन तुम यह नहीं कह सकते हो, ''यह यांत्रिक विचार है, अस्तु हमें अब दूसरे पर दृष्टि डालनी चाहिए''। विचार को रुकना ही है। और वह रुकता भी है। उदाहरणार्थ, जब तुम सौन्दर्य का अवलोकन करते हो, जब तुम हिमाच्छादित शिखरों से युक्त विशाल पर्वत श्रेणियों को देखते हो, तो इसकी महनीयता, इसका ऐश्वर्य तुम्हें अभिभूत कर लेता है और जब वह पर्वत वहाँ नहीं होता, तब पुनः लौट आते हो, अपने संघर्षों के साथ, अपने विचारों के साथ। कृपया स्वयं ही इसे समझने की चेष्टा करो। बैठो, ध्यान करो और इसकी गहराई में जाओ।

छात्र — यह सब कुछ बहुत अच्छा है लेकिन ...

कृष्णमूर्ति — तुम कहते हो, यह सब कुछ बहुत अच्छा है लेकिन, मुझे अपने चाचा के पास जाना है, अपनी बुआ, अपनी माँ, अपनी दादी के पास जाना है, धनार्जन करना है, वगैरह-वगैरह और यही हम सबकी समस्या है। तो अब तुम क्या करने जा रहे हो? जब तुम अनुभव करते हो, देखते हो वस्तुत: कि तकनीकी एवं व्यावहारिक विषयों को छोड़कर, विचार सर्वाधिक अनिष्टकारी, उपद्रवी तत्व है, वास्तविक सम्बन्धों का घातक यही है, अत: प्रेम का विनाशक भी है— तो अब तुम क्या करने जा रहे हो? तुम्हें धनार्जन करना है, जीविका प्राप्त करनी है और इसके लिए विचार अपेक्षित है। अत: विचार का वहाँ तुम प्रयोग करो। जब तुम्हें दन्त-चिकित्सक के पास जाना ही पड़े तो तुम विचार का प्रयोग करो। जब तुम्हें सूट या अन्य वस्त्र खरीदना हो तो तुम तुलना करो कि इसका कपड़ा दूसरे की अपेक्षा श्रेष्ठ है इत्यादि— इसे विचार की अपेक्षा होती भी है। *परन्तु तुम अनुभव करते हो कि विचार वास्तविक सम्बन्धों में घातक है*। यही यथेष्ट है। इति।

●

हिन्दी में उपलब्ध कृष्णमूर्ति साहित्य

1.	ज्ञात से मुक्ति	रु० 70.00
2.	ध्यान	रु० 40.00
3.	हिंसा से परे	रु० 90.00
4.	गरुड़ की उड़ान	रु० 50.00
5.	संस्कृति का प्रश्न	रु० 100.00
6.	शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य	रु० 60.00
7.	शिक्षा संवाद	रु० 75.00
8.	स्कूलों के नाम पत्र	रु० 60.00
9.	सीखने की कला	रु० 15.00
10.	आन्तरिक प्रस्फुटन	रु० 10.00
11.	आमूल क्रान्ति की आवश्यकता	रु० 60.00
12.	सुखी वही जो कुछ नहीं है	रु० 20.00
13.	जीवन भाष्य (I, II प्रति)	रु० 60.00
14.	प्रथम और अन्तिम मुक्ति	रु० 145.00
15.	विज्ञान और सर्जनशीलता	रु० 10.00
16.	जीवन की पुस्तक	रु० 10.00
17.	परम्परा जिसने अपनी आत्मा खो दी है	रु० 5.00
18.	प्रेम : स्वयं से एक संलाप	रु० 10.00
19.	वाशिंगटन वार्ताएँ	रु० 25.00
20.	सत्य एक पथहीन भूमि है	रु० 10.00
21.	स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व एवं अनुशासन	रु० 10.00

जे० कृष्णमूर्ति की रचनाओं और उनसे सम्बन्धित संस्थानों की विस्तृत जानकारी के लिए लिखें—

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी - 221001